ज्यौतिषगेहे भ्रान्तितमो यत्
तत्र सुदीपो

लग्नविवेकः ।

सम्पादकः—
मिथिलादेशान्तर्गत-चौगमानिवासि-
संन्यासिसंस्कृतमहाविद्यालयीय-
त्रिस्कन्ध-ज्यौतिषाध्यापकः ।
ज्यौतिषाचार्य-श्रीसीतारामझा

संशोधकः—
दैवज्ञवाचस्पति-श्रीवासुदेवगुप्तः

प्रकाशकः—
श्रीअन्नपूर्णाप्रकाशनम्
वाराणसी ।

प्रथमसंस्करणम्
सं० २०१४

सम्मति—

यवनों से आक्रान्त होकर परतन्त्र होने पर जिस समय-भारत में प्रौढ़ त्रिस्कन्धज्यौतिषविज्ञों का अभाव सा हो गया, उससमय में यवन ज्यौतिषियोंने प्रमाद या अपने कुतर्क से दृष्टफलोपयुक्त सिद्धान्त-स्कन्धोक्त भवृत्तीय स्वस्वदेशोदयसिद्ध लग्न से ही भावों की कल्पना की, जिसे भारतीय ज्यौतिषियों ने भी सहसा स्वीकार कर लिया। तदनन्तर त्रिस्कन्ध-ज्यौतिषतत्त्वज्ञ-कमलाकरभट्टने उसका खण्डन कर पुनः अदृष्टफलार्थ आर्षभावलग्न ही लेने का समर्थन किया। किन्तु उसके सब दोषों को उद्घाटन करके नहीं दिखलाया इससे तत्त्व नहीं जानने के कारण बहुत से ज्यौतिषी उस अन्धपरम्परा को नहीं छोड़े। तदनन्तर बीसवीं विक्रम शताब्दी में भी त्रिस्कन्धज्यौतिषमर्मज्ञ स्व. रामयत्नओझाजी ने कमलाकरके मतका समर्थन करते हुए आर्ष भावलग्न से ही फलादेश करके जगत् में कीर्ति फैलाई, किन्तु उन्होंने भी भवृत्तीय स्वोदयसिद्ध लग्नसे भाव बनाने में जो जो दोष होते हैं उन्हें नहीं दिखलाये।

सम्प्रति—उन्हीं दोनों के प्रदर्शित पथ को अपना कर त्रिस्कन्ध ज्यौतिषग्रन्थों के व्याख्याता पं० सीतारामझा जी ज्यौतिषाचार्य ने इस छोटे से निबन्ध में स्पष्टरूप से भवृत्तीय स्वस्वदेशोदयसिद्ध लग्न से भावसाधनमें दोषों को दिखलाकर सिद्ध कर दिया है कि अदृष्टफलज्ञानार्थ जन्म यात्रा विवाहादि में—पराशरादिकथित भावलग्न का ही प्रयोग करना प्रमाण और युक्ति सङ्गत है।

आशा है विज्ञजन आर्ष लग्नभाव का ही अदृष्ट फल में व्यवहार करेंगे।

सिद्धेश्वरझा
ज्यौ. आ. ती. त्रिस्कन्ध ज्यौतिषाध्यापक-
संस्कृत महाविद्यालय
सुल्तानगञ्ज (भागलपुर)

श्रीः ।

अथ लग्नविवेकः ।

मङ्गलाचरण—

गिरं गुरुं गणेशञ्च नत्वा लक्ष्मीं तदीश्वरम् ।
अदृग्दृक्फलसिद्धयर्थं द्विधा लग्नं विविच्यते ॥ १ ॥

राशि स्वरूप—

नक्षत्राणां समूहो यः स राशिरिति कथ्यते ।
भवृत्तस्यार्कभागोऽपि राशिरेवाभिधीयते ॥ २ ॥

आकाश में जो नक्षत्रों (ताराओं) के समूह हैं, उसे ही राशि कहते हैं, एवं क्रान्तिवृत्त के वारहवें भाग को भी राशि ही कहते हैं ॥ २ ॥

बिबरण—सूर्य अपनी पूर्वाभिमुखगति से जिस मार्ग से चलता हुआ प्रतीत होता है उसे भवृत्त या क्रान्तिवृत्त कहते हैं। उसके निकटस्थित रेवतीतारान्त विन्दु से क्रान्तिवृत्त के तुल्य १२ भाग मेषादि नाम से १२ राशियाँ कही जाती है। मेषादि प्रतिराशि के आदि और अन्तर्गत दो-दो कदम्बप्रोतवृत्त के बीच में जितने नक्षत्र समूह हैं उन सबों की मेष आदि राशि ही संज्ञा है । वे नक्षत्रबिम्बो के समूह राशि का शरीर तथा क्रान्तिवृत्तमें राशि का स्थान कहा जाता है ।

अतो राशिर्द्विधा प्रोक्तः स्थानबिम्बप्रभेदतः ।
प्रत्यक्षो विम्बरूपोऽस्ति, तत्स्थानं च भवृत्तगम् ।
बिन्दुरूपं हि तच्चापि राशिनाम्नैव कथ्यते ॥ ३ ॥

इसलिये स्थान और बिम्ब (देह) भेद से राशि दो प्रकार की होती है। उनमें नक्षत्रविम्बसमूहरूप राशि तो प्रत्यक्ष दृश्य है, तथा स्थानरूप राशि तो क्रान्तिवृत्तस्थित विन्दुरूप है ॥ ३ ॥

लग्न—

"राशीनामुदयो लग्नमित्युक्तं कोषकारकैः।
लगति क्षितिजे यस्मात् तस्मादन्वर्थनामभाक्॥ ४॥
भेदद्वयाच्च राशीनां लग्नं चापि द्विधा मतम्।
एकं तत्र भबिम्बीयं भवृत्तीयं द्वितीयकम्॥ ५॥

कोशकारों ने राशियों के उदय को लग्न नाम कहा है, वे क्षितिज में लगने के कारण अन्वर्थ संज्ञक हैं। राशियों के दो भेद होने के कारण लग्न भी दो प्रकार के होते हैं—एक भबिम्बीय (नक्षत्रबिम्बोदयवश) द्वितीय भवृत्तीय (क्रान्ति वृत्तीयस्थानोदयवश) ॥ ४-५ ॥

लग्न के प्रयोजन—

एतयोर्लग्नयोर्लोके पृथगस्ति प्रयोजनम्।
जन्मयात्रा-विवाहादौ भबिम्बीयं फलप्रदम्।
लग्नं ग्राह्यं भवृत्तीयं ग्रहणादिप्रसिद्धये॥ ६॥

उन दोनों प्रकार के लग्नों में—जन्म-यात्रा-विवाह-यज्ञादि सत्कर्मों में भबिम्बीय लग्न फलप्रद होता है। तथा ग्रहण आदि (ग्रह नक्षत्र बिम्बोदयास्त) प्रत्यक्ष विषय के कालादि ज्ञान के लिये भवृत्तीय लग्न का प्रयोजन होता है। अतएव 'अदृष्टफल सिद्ध्यर्थ' विवाह यात्रादि कार्य में बिम्बीय लग्न और ग्रहणादि काल ज्ञानार्थ स्थानीय लग्न को ग्रहण करना चाहिये ॥६॥

उपपत्ति—इसकी यह है कि-राशि के बिम्बों के क्षितिजमें उदय होने से उसकी किरणें पृथ्वी पर फैलती है। उन किरणों के गुण (शुभ या अशुभ) का प्रभाव समय और प्राणियों पर पड़ता है, इसलिये अदृष्ट फल प्राप्ति की कामना से यात्रा विवाहादि में बिम्बीयलग्न ग्रहण करने का मुनियों ने आदेश किया है। तथा भवृत्तीय (बिन्दुरूप) लग्न से ग्रहण में-ग्रास-स्पर्श-मोक्षादि काल का सूक्ष्म ज्ञान होता है। इसलिये दृष्ट विषय ज्ञानार्थं अपने अपने स्थानीय उदयमान सिद्ध भवृत्तीय लग्न का उपयोग करने का आदेश है।

बिम्बीय लग्न में विशेषता—

बिम्बोदयाच्च तन्वादि-भावास्तुल्याश्च द्वादश ।
कल्पितास्तत्फलं ज्ञातुं मुनिवर्यैः शुभाशुभम् ॥ ७ ॥

मुनियोंने बिम्बोदय (लग्न) से तनु-धन आदि भावों के फल ज्ञानार्थ तुल्य मान से १२ भावों की कल्पना की है । इसलिये ही बिम्बीय लग्न का भावलग्न नाम रक्खा गया है ॥ ७ ॥

भाव लग्नों का मान—

उदयास्तत्र राशीनां तुल्याः पञ्चघटीमिताः ।
तावद्भिरेव सर्वत्र घटीभिस्तत्प्रसाधनम् ॥ ८ ॥
विहितं जातकस्कन्धे मुनिवर्यैः पुरातनैः ।
शुभाशुभं फलं ज्ञातुं जन्मिनां भूमिवासिनाम् ॥ ९ ॥

उन बारह (१२) राशियों के उदयमान तुल्य ५, ५ घटी होते हैं । इसलिये समस्त पृथ्वी पर जन्मलेनेवालों के शुभाशुभ फल जानने के लिये सर्वत्र ५ घटी मान से ही १२ भावों का साधन मुनियों ने किया है ॥ ८-९ ॥

भवृत्तीयलग्न—

गृहीतं गणितस्कन्धे भवृत्तीयं विलग्नकम् ।
स्वस्वदृष्टिवशाद्यस्मान्नृणां दृक् प्रत्ययो भवेत् ॥ १० ॥
सिद्धान्ते साधितं तस्मात् लग्नं स्वस्वोदयैःपृथक् ॥११॥

मुनियों ने ग्रहणादि ज्ञानार्थ गणित (सिद्धान्त) स्कन्ध में क्रान्तिवृत्तीय लग्न ग्रहण किया है । प्राणियों को अपनी अपनी दृष्टि से ही कोई दृश्य पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, इसलिये सिद्धान्तस्कन्ध में अपने अपने स्थानीय भवृत्तीय राश्युदय द्वारा लग्न साधन किया है ॥ १०-११ ॥

भावलग्न में अदृष्ट फल प्रदत्व—

राशिबिम्बवशादेव फलं भवति देहिनाम् ।
शुभाशुभं सदा, नैव स्थानबिन्दोर्भवृत्तगात् ॥ १२ ॥

प्राणियों को सदा राशि के बिम्बवश ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है, क्रान्तिवृत्तगत बिन्दुरूप-स्थान से नहीं ॥ १२ ॥

भवृत्तस्थानबिन्दूनामुदयः क्षितिजे यदा ।
नैव नक्षत्रबिम्बानां कदाचिदुदयस्तदा ॥ १३ ॥
उन्नाम्यन्ते शरैरूर्ध्वं नाम्यन्ते वा कुजादधः ।
जिनाधिकाक्षदेशे तु सदैवेतिस्थितिर्ध्रुवा ॥ १४ ॥

जिस समय भवृत्तीय स्थान विन्दुओं का अपने अपने क्षितिज में उदय होता है उस समय सब नक्षत्रों के बिम्बों का उदय नहीं होता है। स्थान के उदय समय में नक्षत्रों के बिम्ब अपने अपने शर के द्वारा या तो क्षितिज से ऊपर अथवा क्षितिज से नीचे रहते हैं। २४ से अधिक अक्षांश देश में सब नक्षत्रों की सदा ही यही स्थिति रहती है। (क्योंकि अश्विन्यादि सब नक्षत्रों के कुछ न कुछ शर उपलब्ध होते ही हैं)।

तस्माद् दृष्टफलायैव विलग्नं क्रान्तिवृत्तगम्।
अदृष्टफलसिद्धयर्थं बिम्बीयं भावसंज्ञकम्॥ १५ ॥
साधितं मुनिवर्यैस्तन्न ज्ञात्वाज्ञेन केनचित्।
यवनेन प्रमादाद्वा कुतर्काद्वा स्फुटभ्रमात्॥ १६ ॥
स्वस्वदेशोदयैः सिद्धाल्लग्नोनात् तुर्यभावतः।
षष्ठांशयोजनाद् भावा आर्षभिन्नाः प्रसाधिताः॥ १७ ॥
अभवन् सहसा केचिद् विज्ञास्तदनुगास्ततः।
भारते यवनाक्रान्ते परतन्त्रत्वमागते॥ १८ ॥
ज्योतिर्विदोऽत्र सर्वेऽपि संमिल्य ज्ञानलोचनम्।
विस्मृत्यैव शुभां रीतिं नीलकण्ठमुखा विदः॥ १९ ॥
अन्धेन नीयमानान्धा इव संचलिता मुधा॥ २० ॥

इसी (ऊपर कहे हुए) हेतु से दृष्टफल (ग्रहण, ग्रहबिम्बोंदयादि) ज्ञान के लिये स्वस्वदेशोदयसिद्ध स्थानीय लग्न तथा अदृष्ट (विवाह-यात्रादि में शुभाशुभ) फलज्ञानार्थ बिम्बीयभावलग्न का साधन मुनियों ने किया। किन्तु किसी ने मुनियों के कहे हुए तत्व को न जानकर प्रमाद या कुतर्क * अथवा स्वदेशोदयसिद्ध लग्न

* ("किसी लाल बुझक्कर ने समझा कि—जब स्वदेशोदयसिद्ध लग्न से दृष्ट (ग्रहणादि) फल मिलते हैं, तो इसीसे अदृष्ट फलादेश भी करना चाहिये' ऐसा कुविचार)

को स्पष्ट (भावलग्न से अच्छा) होने के भ्रम से-स्वदेशोदयसिद्धलग्न से ही आर्ष विरुद्ध द्वादशभावों का साधन प्रकार (लग्नोनतुर्यंतः षष्ठांशयुक् इत्यादि) बनाया। फिर सहसा (इस प्रकार में दोषों को बिना विचारे ही प्रमादवश) बहुत से ज्यौतिषी भी उसके अनुयायी बन गये। एवं भारत पर यवनों के आक्रमण से परतन्त्र हो जाने पर सब ज्यौतिषियों ने इसी मत को अपनाया, फिर नीलकण्ठ आदि भी अपने ज्ञानरूप नेत्र को मूँदकर अन्धे के सहारा चलनेवाले अन्धों के समान चलने लगे जो परम्परासी बनगई ॥ १५-२० ॥

ततः परं श्रीकमलाकरेण
ज्योतिर्विदम्भोजदिवाकरेण ।
विनिन्द्य सर्वानपि जातकज्ञान्
ग्रन्थे निजे तत्त्वविवेकसंज्ञे ॥ २१ ॥
यथोदितं च स्वमतं तथाहं
वदामि विज्ञा ? इह तन्मुखोक्त्या।
"महर्षिभिः स्वीयकृतौ निरुक्ता
लग्नांशतुल्या रविसंख्यका ये ॥ २२ ॥
भावाः समा एव सदा फलार्थं
ग्राह्यास्त एव ग्रहगोलविद्भिः ।
मुन्युक्तभावात् परतोऽपि पूर्वं
तिथ्यंशकैस्तस्य फलं निरुक्तम् ॥ २३ ॥
लोकेषु मूर्खोदरपूरणार्थं
मूर्खैर्विलग्नाद्रविसंख्यका ये।
भावा निरुक्ताः स्वधिया त्वनार्षाः
सम्यक् फलार्थं नहि तेऽवगम्याः ॥ २४ ॥

"तदनन्तर इस अनर्थ को देखकर ज्योतिर्वित्कमलवनमें सूर्य के समान श्री कमलाकरभट्ट ने अपने तत्त्वविवेक नामक अति श्रेष्ठ सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थ में उन ज्योतिषियों की निन्दा करते हुए जिस प्रकार अपना मत कहा है-उसको मैं उन्हीं के शब्दों मेंही यहाँ कहता हूँ ॥" यथा—"महर्षियों ने अपने अपने ग्रन्थ में

लग्न के अंश तुल्य ही (लग्न राश्यादि में एक एक राशि जोड़कर) अंशवाले तुल्य उदयमान से जो द्वादशभावों का साधन किया है—हे ग्रहगोलज्ञ ! सर्वदा फल (अदृष्ट फल) ज्ञानार्थं उन्हीं भावों को ग्रहण करना चाहिये । उन मुनियों के कहे हुए भावों से १५ अंश पूर्व से १५ अंश आगे तक (पूरे ३० अंश के भीतर) उस भाव का फल कहा गया है । किन्तु लोक में मूर्खों ने अपने सदृश मूर्खों के पेट पालने के लिये अनार्ष (आर्षविरुद्ध स्वस्वोदयमानसिद्ध) जो द्वादशभावों की (अपने कुतर्क द्वारा) कल्पना की है उन भावों को फलकथन (विवाह यात्रादि) में कभी भी उपयुक्त नहीं मानना चाहिये ॥" २१-२४ ॥

इति भट्टेन यत् प्रोक्तं तत् तथ्यं युक्तिसंयुतम् ।
तत्कारणं मयाऽप्युक्तं पूर्वमन्यच्च सम्शृणु ॥ २५ ॥

इसप्रकार भट्ट का कहना सर्वथा सत्य और युक्तिसंयुक्त है, इसका कारण मैंभी पूर्व कह चुका हूँ; तथा और भी सुनिये ॥ २५ ॥

यथा बिम्बीयराशीनां सर्वेषामुदयः सदा ।
सर्वस्य क्षितिजे तद्वत् स्थानीयानां न भूतले ॥२६॥

पृथ्वीपर रहनेवाले सबके क्षितिज में जिस प्रकार बिम्बीय १२ राशियों के उदय सर्वदा होते ही हैं, उस प्रकार स्थानीय (भवृत्तीय) सब राशियों के उदय नहीं होते हैं ॥ २६ ॥

वि०—भगोल में रेखारूप क्रान्तिवृत्त की स्थिति पूर्वापर रूप है । अतः भचक्र के पूर्वापर भ्रमण होने के कारण सर्वत्र सब के क्षितिज में क्रान्तिवृत्तीय सब राशियों के उदय नहीं होते हैं । किन्तु बिम्बीय राशियों की स्थिति दक्षिणोत्तर भाव से (उत्तर कदम्ब से दक्षिण कदम्ब तक) सावयवरूप फैले हुए हैं, इसलिये भचक्र के पूर्वापर भ्रमण होने के कारण—पृथ्वीपर रहनेवाले सब के क्षितिज में सब बिम्बीय राशियों के उदय होते ही हैं । यह विषय गोलगणितज्ञजन अच्छी तरह जानते हैं ।

क्वचित् स्थानीयराशीनां दशानामुदयः सदा ।
अष्टानामेव राशीनां षण्णामेव च कुत्रचित् ॥ २७ ॥

चतुर्णामेव राशीनां द्वयोरेवोदयः क्वचित् ।
एकस्यैवेति जानन्ति सम्यग् गोलविदो विदः ॥ २८ ॥

किसी स्थान में १० ही स्थानीय राशियों के उदय होते हैं तो कहीं ८, कहीं ६, कहीं ४, कहीं २ के और कहीं एक ही राशि का सदा उदय होता है। इस विषय को अच्छी तरह गोलज्ञजन जानते हैं ॥ २८ ॥

एवं स्थानीयराशीनां सर्वेषां यत्र नोदयः ।
तत्र द्वादशभावानां कथं सिद्धिः प्रजायते ? ॥२९॥

ऐसी स्थिति है तो—जिस स्थानमें सब राशियों के उदय नहीं होते हैं वहाँ द्वादशभावों को सिद्धि किस प्रकार हो सकती है ॥ २९ ॥

अन्यञ्च—

षड्साक्षांशदेशे तु कदम्बर्क्षे खमध्यगे ।
युगपत् सवराशीनामुदये किं विलग्नकम् ? ॥३०॥

इस पृथ्वी पर ६६ अक्षांश स्थानमें जब कदम्ब-तारा नित्य खमध्यमें आती है तो एक साथ १२ राशियों का उदय होता है, उस समय वहाँ कौन लग्न माना जाय ? ॥ ३० ॥

अथापि—

राशेरर्धमिता होरा सर्वैः स्वीक्रियते ह्यतः ।
लग्नस्य पूर्णमानं यत् होरालग्नं तदर्धकम् ॥ ३१ ॥
सर्वथा भवितुं योग्यमिति जानन्ति पण्डिताः ।
सार्धद्विघटिकामानात् होरालग्नं प्रवर्त्तते ॥ ३२ ॥
अतः पञ्चघटीमानात् लग्नं भवितुमर्हति ।
इति बालोऽपि जानाति काऽत्र बुद्धिमतां कथा ? ॥ ३३ ॥

राशि का आधा (१५ अंश) होरा होती है। इस बात को सब मानते हैं, इसलिये राशिलग्नोदयमान का आधा होरालग्नोदयमान होना चाहिये। यह भी सब पण्डित जानते हैं। जब होरालग्न का उदयमान अढ़ाई घड़ी हो तो लग्न का मान पाँच घड़ी ही होना चाहिये। इस स्वतः सिद्ध बात को एक

बालक (अबोध) भी जान सकता है फिर बुद्धिमान् की तो बात ही क्या ? ॥ ३१-३३ ॥

एवं स्वोदयजे लग्ने फलार्थं बह्वसङ्गतिः ।
होरालग्नं गृहीत्वैव विज्ञैर्मुन्युक्तमेव हि ॥ ३४ ॥
विचारः क्रियते सर्वैर्जैमिन्यायुःप्रसाधने ।
लग्नं स्वोदयजं तत्र किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार अदृष्टफलार्थ स्वस्वोदयलग्नमें अनेको असङ्गति है । जैमिनिमत से आयुर्दाय साधन करने में सभी विज्ञजन होरालग्न तो मुन्युक्त (अढ़ाई घड़ी मान सिद्ध) लेकर विचार करते हैं—किन्तु वहाँ लग्नमान स्वदेशोदयसिद्ध लेते हैं इससे आश्चर्य और क्या हो सकता है ? ॥ ३४-३५ ॥

तथा विश्वाक्षभादेशे होरालग्नप्रमाणतः ।
लग्नमानं भवेदल्पमिति किं नाद्भुतं महत् ? ॥ ३६ ॥

क्योंकि जहाँ पलभा १३ हैं वहाँ होरालग्न के उदयमान से स्वोदयसिद्ध पूर्णलग्न का मान अल्प हो जाता है । क्या यह महाआश्चर्य नहीं है ? ॥ ३६ ॥

यथा उदाहरण—पलभा १३, इसको १० से गुना करने से प्रथम चरखण्ड १३० इसको मेष के लङ्कोदयमान २७८ में घटाने से मेष राशि (३० अंश) का उदयमान १४८ पल और होरा लग्न (१५ अंश) का उदयमान अढ़ाई घड़ी अर्थात् १५० पल होता है ॥ ३६ ॥

तथा च पलभा यत्र वसुनेत्रमिता भवेत् ।
मीन-मेषोदयस्तत्र शून्यादल्पोत्र का गतिः ? ॥३७॥

एवं जहाँ पलभा २८ है वहाँ मीन और मेष का स्वदेशोदय पल शून्य से भी अल्प हो जाता है वहाँ स्वोदय द्वारा किस प्रकार भावों की सिद्धि हो सकती है ॥ ३७ ॥

उदाहरण—पलभा २८ इसको १० से गुना करने से प्रथम चरखण्ड २८० । इसको मेष लङ्कोदय में घटाने से मीन और मेष का स्वोदय ऋणात्मक दो पल होता है जो शून्य से भी अल्प है ।

तथा च मीनलग्नान्ते गण्डान्तं घटिकार्धकम्।
तावदेव च मेषादौ त्याज्यमुक्तं मुनीश्वरैः॥ ३८॥
लग्नमानं भवेद्यत्र स्वल्पं गण्डान्तमानतः।
समं वा तत्र भो विज्ञ! मुन्युक्तेः सङ्गतिःकथम्॥ ३९॥

और भी—मुनियों का कथन है कि—मीन लग्न के अन्त और मेष लग्न के आरम्भ में आधा-आधा घड़ी लग्नगण्डान्त होता है। उसको सब सत्कार्यों में त्याग देना चाहिये। किन्तु जहाँ स्वदेशोदय सिद्ध लग्नमान गण्डान्त घड़ी के तुल्य या उससे भी अल्प हो तो हे विज्ञजन! वहाँ मुनि वचनों की सङ्गति किसप्रकार हो सकती है॥ ३८-३९॥

उच्यतां चेदिदं शास्त्रं तद्देशार्थं न चोदितम्।
इत्युक्तिरपि मूर्खोक्तिसमैव प्रतिभाति मे॥ ४०॥

यदि यह कहा जाय कि—यह शास्त्र उस स्थानवासियों के लिये नहीं कहा गया है? तो ऐसा कहना भी मूर्खों के कथन के समान ही मैं समझता हूँ॥४०॥

साङ्गवेदपुराणानि सर्वभूतहितेच्छया।
कृतानि मुनिभिः सर्वैर्नहि त्वेकस्य हेतवे॥ ४१॥

क्योंकि षडङ्ग (ज्यौतिष आदि) सहित वेद और पुराण समस्त पृथ्वी स्थित प्राणियों के हितार्थ कहे गये हैं—किसी एक व्यक्ति के लिये नहीं॥४१॥

ये सन्ति संहिता-होरा-सिद्धान्तेषु कृतश्रमाः।
जानन्ति सर्वमेतत्ते ज्ञास्यन्ति च सुबुद्धयः॥४२॥
तानहं प्रार्थये विज्ञान् सुहृदश्च कृताञ्जलिः।
यद् भवन्तोऽनृतं मार्गं त्यक्त्वा गच्छन्तु सत्पथम्॥४३॥
एतावद्दिनपर्यन्तं यदस्माभिः प्रमादतः।
कृतं तद् विगतं तत्तु न शोच्यं जातु पण्डितैः॥४४॥
यद्भूत् तद्भूत् भूते नास्ति तत्र प्रतिक्रिया।
नाग्रे यथा प्रमादःस्यात् यतितव्यं तथा सदा॥४५॥

जिन्होंने संहिता-होरा और सिद्धान्त ज्योतिष का अध्ययन किया है वे इस विषय को अच्छी तरह जानते हैं और जानेंगे; उन सुहृद्वर्गों से मेरी करबद्ध

प्रार्थना है कि आप असत् मार्ग को छोड़कर सत्यपथ पर चलें। इतने दिन हम लोगों ने प्रमादवश जो किया वह तो बीत गया उसके लिये पण्डितों को शोच नहीं करना चाहिये। जो पीछे हो गया सो हो गया उसकी तो अब कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं है, आगे फिर प्रमाद न हो ऐसा यत्न सर्वदा करना चाहिये ॥ ४२-४५ ॥

अब मैं – यात्रा-यज्ञ-विवाह-जातकादि के शुभाशुभ फल ज्ञानार्थ मुनियोंने जिस लग्न का आदेश और उसका साधन जिस प्रकार बतलाया है—उसे सकल साधारणजनों के उपकारार्थ-सोदाहरण दिखलाता हूँ।

यथा—जन्मकालादि से शुभाशुभ फल समझने के लिये—मैत्रेय से महर्षि पराशर ने कहा है—

> "अथाहं संप्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम ?।
> भाव-होरा-घटी-संज्ञ-लग्नानीति पृथक् पृथक्" ॥ ४६ ॥

महर्षि पराशर ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ (मैत्रेय) अब मैं भावलग्न, होरा लग्न और घटीलग्न को पृथक् पृथक् कहता हूँ ॥४६॥

वि०—स्वभावतः प्राणियों के मनमें सामान्यतया शरीर, धन, पराक्रम, सुख, सन्तान, आरोग्य, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय इन भावों का उदय हुआ करता है, उसके शुभाशुभत्व मुख्यतया जिस काल के द्वारा होता है उसको भावलग्न कहते हैं। सूर्योदय के अनन्तर ६० घड़ी में १ भचक्र भ्रमण होने के कारण—१२ राशियों के उदय हो जाते हैं। अतः नाक्षत्र अहोरात्र में ६० घड़ी होने के कारण ५,५ घड़ी में एक-एक भाव राशि का उदय हुआ करता है।

अतः लग्न साधन प्रकार—

> इष्टं घट्यादिकं भक्त्वा पञ्चभिर्भादिकं फलम्।
> योऽयमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं च तत् ॥ ४७ ॥

सूर्योदय से घट्यादि इष्टकाल में ५ के भाग देकर लब्धि राश्यादि फल को औदयिक सूर्य में जोड़ने से स्पष्ट भावलग्न होता है ॥ ४७ ॥

वि०—पूर्व कहा जा चुका है कि लग्न दो प्रकार के होते हैं। उनमें अपनी अपनी दृष्टिवश (अपने अपने स्थानीय राश्युदय द्वारा सिद्ध) जिस लग्न से

ग्रहणादि की गणना होती है वह केवल 'लग्न' शब्द से बोधित किया गया है। तथा जिससे उपरोक्त भावों के फल का ज्ञान होता है। वह 'भावलग्न' शब्द से व्यवहृत है। उसके अन्तर्गत उसी के सूक्ष्म अवयव आधा और पञ्चमांश के उदय होरालग्न और घटीलग्न नाम से व्यवहृत है।

अतः होरालग्न साधन प्रकार—

तथा सार्धद्विघटिका—मितादर्कोदयाद् द्विज।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥ ४८ ॥
इष्टघट्यादिकं द्विघ्नं पञ्चाप्तं भादिजं च यत्।
योज्यमौदयिके भानौ होरालग्नं स्फुटं च तत् ॥ ४९ ॥

एवं अढ़ाई घडीमान से जिसका उदय होता है उसे होरालग्न कहा गाय है। उसका साधन प्रकार यह है कि—इष्ट घड़ीपल को २ से गुना करके उसमें ५ के भाग देने से जो अंशादि लब्धि हो उसको उदयकालिक सूर्य में जोड़ने से राश्यादि होरालग्न होता है ॥ ४८-४९ ॥

घटीलग्न साधन—

कथयामि घटीलग्नं शृणुत्वं द्विजसत्तम।
सूर्योदयात् समारभ्य स्वेष्टकालावधि क्रमात् ॥ ५० ॥
एकैकघटिकामानात् लग्नं यद्याति भादिकम्।
तदेव घटिकालग्नं कथितं नारदादिभिः ॥ ५१ ॥
राशयस्तु घटीतुल्याः पलार्धप्रमितांशकाः।
योज्यमौदयिके भानौ घटीलग्नं स्फुटं हि तत् ॥ ५२ ॥

हे द्विजोत्तम! अब मैं घटीलग्न कहता हूँ। सूर्योदय से आरम्भ करके अभीष्टकालपर्यन्त एक एक घटी मान से जो बीतता है—उसको नारदादि महर्षियों ने घटीलग्न कहा है। उसका साधन प्रकार यह है कि—इष्टकाल जितनी घड़ी हो उतनी राशिसंख्या तथा जितने पल हों उसके आधा अंशादि मानकर औदयिक सूर्य में जोड़ने से राश्यादि घटीलग्न स्पष्ट हो जाता है ॥ ५०-५२ ॥

वि०—सूर्य में राश्यादि फल जोड़ने से १२ से अधिक हो तो उसे १२ से शेषित कर लेना चाहिये।

भावलग्न साधनोदाहरण—

औदयिक सूर्य ५।२४।१४।४८ सूर्योदय से इष्टघड़ीपल ११।१३, इसमें ५ के भाग देने से राश्यादि २।७।१८ लब्धि को औदयिक सूर्य में जोड़ने से ८।१।३२।४८। यह राश्यादि भावलग्न अर्थात् तनुभाव हुआ। इसमें १५ अंश जोड़ने से सन्धि होती है और लग्न में १ राशि जोड़ने से ९।१।३२।४८ यह द्वितीय भाव। एवं आगे भी सन्धि और भाव समझना चाहिये

यथा—द्वादशभाव चक्र

त—१	सं.	ध—२	सं.	आ—३	सं.	सु—४	सं.	पु.—५	सं.	रि—६	सं.
८	८	९	९	१०	१०	११	११	०	०	१	१
१	१६	१	१६	१	१६	१	१६	१	१६	१	१६
३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८
क—७	सं.	मृ—८	सं.	ध—९	सं.	क—१०	सं.	आ-११	सं.	व्य-१२	सं.
२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	७	७
१	१६	१	१६	१	१६	१	१६	१	१६	१	१६
३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८

स्पष्टग्रह—

र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
५	४	५	५	४	६	६	७	१
२४	१०	६	२८	१	६	२६	२७	२७
२६	३३	१	३८	५५	६	२८	३	३
१	५४	१	५५	४५	४०	३	५	५
५९	७९०	३६	२७	१०	७४	६	३	३
३१	२१	५	५१	३९	२६	३७	११	११
			व					

लग्नचक्र लिखने की रीति —

लग्नराशिः पुरः स्थाप्यस्ततो राशीन् क्रमाल्लिखेत् ।
तत्र तत्र ग्रहः स्थाप्यो यस्मिन् राशौ च यः स्थितः ॥५३॥

१२ कोष्ठों का एक चक्र बनाकर उसके प्रथम (सामने वाले) कोष्ठ में लग्न राशि को लिखकर आगे क्रम से सब राशियों को लिखे, फिर जो ग्रह जिस राशि में हो उस राशि में उसको लिखे ॥५३॥

चलित भावचक्र—

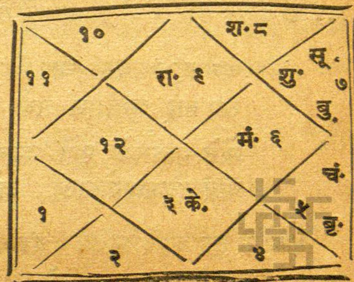
एवं भावफलं ज्ञातुं भावचक्रं पृथग् लिखेत् ।
संधेरल्पो ग्रहः पूर्व—भावे स्थाप्योऽधिकोऽग्रिमे ॥ ५४ ॥
सन्ध्यंशादिसमे सन्धौ ततो वाच्यं शुभाशुभम् ।
जन्म-यात्रा-विवाहादि—सत्कर्मसु विचक्षणैः ॥ ५५ ॥

इसप्रकार भावों के फल जानने के लिये एक भावचक्र पृथक् लिखना चाहिये । उसमें सन्धि से ग्रह अल्प हो तो पूर्व भाव में, सन्धि से अधिक हो तो अग्रिम भाव में ग्रह को लिखना । यदि सन्धि के अंश तुल्य ग्रह के अंश हो तो उसी सन्धि स्थान में उस ग्रह को लिखना चाहिये ॥ ५४-५५ ॥

राशिलग्नकुण्डली ।



चलितभावकुण्डली ।



जैसे— भावलग्न धनु है अतः चक्र के प्रथम (सम्मुख) स्थानमें ९ लिखकर क्रम से सब राशि लिखी गई है। उसमें सूर्य कन्या राशि में है अतः ६ में सूर्य लिखा गया।

इसप्रकार लग्नराशि कुण्डली में सूर्य दशवें स्थान में है, तथा दशवां कर्म भाव है, उसके अग्रिम संधि से सूर्य अधिक है अतः उस संधि के अगले भाव (११ भाव) में सूर्य लिखा गया। एवं अन्य अन्य ग्रहों को लिखकर उपरोक्त चक्र में दिखाया गया है।

दोनों प्रकार कुण्डली का प्रयोजन—

राशिचक्राच्च खेटानां चिन्त्यं स्थानादिजं बलम्।
स्वोच्च-स्वराशि-मित्रर्क्ष-नीचाद्याश्रयजं फलम् ॥ ५६ ॥

सूर्याद् वेशिमुखा योगाश्चन्द्राच्च सुनफादयः।
संख्याश्रयादिका योगा विचिन्त्या दैवचिन्तकैः ॥ ५७ ॥

ग्रहयोगफलं तद्वत् फलं खेटर्क्षयोगजम्।
किन्तु-केन्द्रत्रिकोणादि संज्ञा चक्रद्वयादपि ॥ ५८ ॥

लग्नराशि चक्र में स्थित ग्रहों के—उच्च—गृह—नीच—मित्रगृह आदि तथा सूर्य से वेशि, वोशि आदि एवं चन्द्रमा से अनफा, सुनफादि योग तथा संख्या आश्रय और नाभस आदि योग, द्विग्रह आदि योग, ग्रहराशियोग आदि का विचार लग्नराशि चक्र से ही करना चाहिये। किन्तु भाव या ग्रह से केन्द्र, त्रिकोण आदि संज्ञा दोनों ही चक्र में समझना चाहिये ॥ ५६-५८ ॥

लग्नाद्भावफलं यद् यद् ग्रहयोगात् प्रकीर्तितम्।
तत् तत् शुभाशुभं सर्वं भावचक्राद् विचिन्तयेत् ॥ ५९ ॥

खेटे भावसमे पूर्णं शून्यं सन्धिसमे स्मृतम्।
फलं तद्भावखेटोत्थं ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ॥ ६० ॥

लग्न से तनु आदि भावोंमें ग्रहयोग सम्बन्धी जो जो फल कहे गये हैं उनको भावचक्र से समझना चाहिये। भाव के अंशादि तुल्य ग्रह हो तो पूर्णफल

और सन्धि के अंशादि तुल्य हो तो शून्यफल एवं सन्धि और भाव के बीच में हो तो अनुपात से फल समझना चाहिये ॥ ५७-५८ ॥

वि०—अनुपात यह है कि-सन्धिसे १५ अंश अन्तर पर (भावतुल्य होने से) पूर्णफल (६० कला) तो इष्ट सन्धि ग्रहान्तर में क्या ? इस त्रैराशिक से लब्धि-

$$\text{भावफल} = \frac{\text{६०}' (\text{सं} \backsim \text{ग्र})}{\text{१५}} = \text{४}'(\text{सं} \backsim \text{ग्र})$$

। इससे उपपन्न होता है कि—

"सन्धिग्रहान्तरांशाद्यं वेदैः क्षुण्णं कलादिकम् ।
फलं तद्भावखेटोत्थं विज्ञेयं दैवचिन्तकैः ॥ ६१ ॥

अर्थात् सन्धि ग्रहान्तरांश संख्या को ४ से गुना करने से भाव फल का मान होता है । जैसे सूर्य—५।२४।१४।४८ और सन्धि ५।१६।३२।४८ इन दोनों का अन्तर अंशादि ७।४२।० को ४ से गुना करने से ३०।४८ ० यह सूर्य सम्बन्धी ११ भावका फल प्रमाण हुआ ।

एवं कलादि फल ४० से ऊपर पूर्ण, ४० से नीचे २० तक मध्यम और २० से अल्प हो तो हीन समझा जाता है ।

होरालग्नोदाहरण—इष्टघडी ११|१३ को दूना करने से २२|२६ इसमें ५ के भाग देने से लब्धि राश्यादि ४|१४|३६ को औदयिक सूर्य ५|२४|१४|४८ में जोड़ने से १०|८|५०|४८ यह राश्यादि होरा लग्नमान हुआ ।

घटीलग्नोदाहरण—

इष्ट घटीपल ११|१३ घड़ी तुल्य ११ राशि और- पल १३ के आधा ६ अंश ३० कला इसको औदयिक सूर्य में जोड़ने से ५|०|४४|४८ यह राश्यादि—घड़ी लग्नमान हुआ ।

स्थानलग्नवशाद्यस्माद् भावसिद्धिर्नजायते ।
तस्मात् जातकयात्रादौ भावलग्नात् फलं वदेत् ॥६२॥

चूंकि स्वोदयमानसिद्ध लग्नसे भावसिद्धि नहीं होती अतः भावलग्न से ही फल कहना चाहिये ।

इति संक्षेपतो लग्नविवेकः कथितो मया ।
यात्र काचित् त्रुटिः सा हि क्षन्तव्या तत्त्ववेदिभिः ॥६३॥

स्वभावादेव सन्तुष्टा भविष्यन्ति सुहृज्जनाः ।
भवन्तु मुदिता विज्ञा विज्ञाय मदुदीरितम् ॥ ६४ ॥

न ज्ञात्वा तत्त्वमत्रत्य-मज्ञा अपि हसन्तु माम् ।
इत्यहं सफलं मन्ये सर्वथैव निजश्रमम् ॥ ६५ ॥

अथ पूर्वजनैः प्रोक्तं लक्षणं विज्ञमूढयोः ।
प्रसङ्गाद् विलिखाम्यत्र बालकानां मुदे यथा ॥ ६६ ॥

"दोषं विलोक्यापि 'परम्परा मे'
मत्वेति तां नैव जहाति मूढः ।
तातस्य कूपोऽयमिति-ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥ ६७ ॥

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न वाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्याण्यतरद् भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ ६८ ॥

—:(❀):—

मार्ग्यां शक्रनखैस्तुल्ये विक्रमाब्देऽधिकाशिकम् ।
सीतारामकृतो लग्नविवेकः पूर्णतां गतः ॥ ६९ ॥

इति मिथिलादेशान्तर्गतचौगमाग्रामनिवासि—
ज्यौतिषाचार्यश्रीसीतारामझाशर्मकृतो लग्नविवेकः ॥

समाप्तः

मुद्रक—जनता प्रेस, बुलानाला, वाराणसी ।

शीघ्र प्रकाशित होनेवाले ये तीन ग्रन्थ—

नक्षत्रफलदर्पण—इसमें-किसी भी व्यक्ति के जन्मनक्षत्र और जन्मलग्न से ही जीवनभर के समय समय पर परिवर्तन होनेवाले शुभाशुभ फल एवं अशुभफलों के निवारण का उपाय, आयुर्दायमान, शारीरिक सुख-दुःख, धन की वृद्धि-हानि, सन्तान, विवाह, स्त्रीसुख भाग्योदय, किस व्यापार से विशेषलाभ, राजयोग आदि ऋषि वचनानुकूल सब फलों का स्पष्ट विवरण सरल भाषा में उदाहरण सहित किया गया है।

आयुर्दायविवेक—इस छोटे से ग्रन्थ में-आयुर्दाय क्या वस्तु है, उसका प्रयोजन क्या है, उसके मुख्य भेद कितने हैं तथा उनमें भी किस की प्रधानता है इत्यादि विषयों के विवरण—सहित आयुर्दाय साधन प्रकार सोदाहरण दिखलाया गया है।

जन्मपत्रनिर्माणपद्धति—इस छोटीसी पुस्तक में जन्मपत्र निर्माण विधी इतनी सहज बोधगम्य रीति से सोदाहरण दिखलाई गई है कि नवसिखुवे ज्यौतिषी (विद्यार्थी) भी इस पुस्तक के सहारे उत्तमोत्तम शुद्ध जन्मपत्र बना सकते हैं।

—प्रकाशित हो गये—

ग्रहफलदर्पण—ज्योतिषप्रेमियोंकेलिये परम उपयोगी। फलित ज्यौतिष-शास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह।
इसमें—द्वादशभावस्थ नवग्रहों के पुरुषजातक, सम्बन्धी फल तदतिरिक्त स्त्रीजातक, वर्षफल, मुथहा का फल एवं ग्रहशान्तिविधान के साथ-साथ ग्रहों के उच्च-नीच बला-बल आदिक अनेक भेदों का विवेचन समाविष्ट है। जिससे जातक सम्बन्धी ग्रहफलनिर्णय और उत्तमोत्तम फल कहने का निर्देश सारयुक्त, अति सरल भाषा-भावार्थ और सहजबोधगम्य रीति से उदाहरण सहित दिखाया गया है। ज्यौतिष विषय में अल्प ज्ञान रखनेवाला भी इस पुस्तक के सहारे निपुण ज्यौतिषी कहला सकता है। मूल्य मात्र १-८-० सजिल्द।

आर्यासप्तति:—फलित ज्यौतिषोद्धारक-दैवज्ञ भट्टोत्पल विरचित केवल ७० आर्या छन्दों में अति श्रेष्ठ प्रश्नग्रन्थ।
भाषाटीकासहित, विशेषादि उदाहरणयुक्त जिससे प्रत्येक ज्यौतिषी प्रश्नलग्न पर से ही प्रश्नकर्त्ता को प्रसन्न कर देनेवाला चमत्कारी फलादेश तत्काल निर्देश कर सकता है। मूल्य—।-)

शकुनविवेक—इस छोटीसी पुस्तकमें नित्य व्यवहारमें आने वाले समस्त शकुनों (अङ्गस्फुरण, छींक, पल्लीपतन, यात्रादि में शुभाशुभ दर्शन आदिकों) का सरल भाषा में समावेश किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति के लिये परमोपयोगी है। मूल्य लागतमात्र।)